Day 080-285 Wk-12
WEDNESDAY

03/2018

Monday	–	5	12	19	26
Tuesday	–	6	13	20	27
Wednesday	–	7	14	21	28
Thursday	1	8	15	22	29
Friday	2	9	16	23	30
Saturday	3	10	17	24	31
Sunday	4	11	18	25	–

B.A. II Hindi Hons.

'संतकाव्य की प्रवृत्तियाँ' क्रमशः

डॉ० सतीश चन्द्र पाठक
प्राध्यापक, हिन्दी विभाग
ई०सी०सी० कॉलेज, इलाहाबाद

(7) सुरति या नाम स्मरण :- संतकाव्य में सुरति का बड़ा महत्व है। सुरति अर्थात स्मृति - ईश्वर को याद करना या उसके स्मरण में डूबना सुरति कहलाता है। संतकवि अहर्निश अपने उपास्य की स्मृति में डूबे होते हैं। कबीर इस तथ्य को स्वीकार करते हैं कि इस सांसारिक प्रपंच में ईश्वर का स्मरण करना ही बहुत बड़ी उपासना है। यौगिक साधना सभी के बस की बात नहीं हो सकती। इसीलिए वे कहते हैं :-

ज्यों तिरिया घर में रहे, सुरत रहे पिय मांहि।
ऐसे जन जग में रहे हरि को भूलत नाहिं।

इस स्मृति एवं भजन की एक पद्धति उन्होंने स्वीकार कर रखी है कि इसमें प्रदर्शन के स्थान पर गोपन की प्रधानता होनी चाहिए। इसलिए भजन एवं स्मरण भी मन ही मन होना चाहिए संसार के समक्ष प्रकट नहीं होना चाहिए -

सहजो सुमिरन कीजिए हिरदै माहिं छिपाई।
होंठ - होंठ सूँ ना हिलें सकै नहीं कोई पाई।।

भजन की गोपनीयता का यह चरम बिन्दु है जहाँ स्मरण हृदय से हो किन्तु होंठ को हिलना भी नहीं चाहिए। ऐसा शायद इसलिए कि प्रदर्शन से लोगों में साधक के प्रति आस्था जगती है जिससे साधक के मन में अहंभाव सिर उठाने लगता है जो साधक के लिए अत्यन्त खतरनाक होता है। इसीलिए भजन और स्मरण में इतनी गोपनीयता बरतने की सलाह दी जाती है।

(8) संयोग एवं वियोग का हृदयहारी वर्णन :- संत कवियों की मान्यता है कि परमात्मा परम पुरुष है और आत्मा उसकी प्रियतमा या पत्नी है। समस्त साधनाओं का फल है- इस आत्मा और परमात्मा का एकमेक हो जाना। प्रिय और प्रियतम का एक दूसरे में विलीन हो जाना। जबतक यह नहीं हो पाता साधना पूर्ण नहीं होती उसमें अपूर्णता बनी रहती है। यह अपूर्णता ही संत कवियों के लिए वियोग का कारण है। प्रिय से आगे ~~दूर~~ देखकर

उनका हृदय आठ-आठ आंसू बहाता है। वह अपने प्रियतम को भुलाना चाहता है किन्तु उसमें उठे सौ-सौ बाधाएं विरह व्यथा पहती हैं इसलिए भुला भी नहीं पाता ऐसे में उसे लगता है कि वह इस संसार में भला कैसे जिये —

आइ न सकूं तुज्झ पैं, सकूं न तुज्झ बुलाई।
जियरा यूहीं लेहुगे बिरह तपाई-तपाई॥

संत काव्य में संयोग श्रृंगार के वर्णन के क्रम में रूपाकर्षण, प्रियमिलन की आतुरता, स्वयंवरा, आत्मपतिका का उल्लास, प्रथम समागमजन्य की लज्जा इत्यादि का ऐसा विस्तृत एवं मनोहारी ~~का~~ वर्णन हुआ है कि पाठक यह सोचता रह जाता है कि यह संत काव्य है या सामान्य नायक-नायिका का श्रृंगार वर्णन। संतों का यह वर्णन उनकी साधना की गहराई एवं उत्कटता का बोध करता है। संत कवियों का श्रृंगार वर्णन स्थूल रूप से देखने पर जितना लौकिक दिखता है वास्तव में वह उतना ही अलौकिक और दिव्य है। दिव्य प्रेम की ऐसी समर्पण भावना संसार में विरल है।

(९) लोक संग्रह की भावना :- संत कवियों का बहुलांश प्रायः सामाजिक एवं गृहस्थ जीवन व्यतीत करने वाले थे। नाथपंथी योगियों से प्रभावित होने का बावजूद संन्यास इनका लक्ष्य नहीं था। जीवन के समस्त ऊँच और नीच का इन्होंने अनुभव किया था। यही कारण है कि इनकी वाणियों में जीवनगत अनुभवों की सर्वांगीणता है। एक ओर जहाँ इन्होंने वैयक्तिक शुद्धि, आत्मशुद्धि पर बल दिया वहीं सामाजिक सुधारों के भी वे आग्रही बने रहे। शायद इसी का परिणाम है कि इनकी वाणियों में सामाजिक विसंगतियों पर तीखा प्रहार मिलता है। ये जितना अपने प्रति उत्तरदायी हैं उतना ही समाज के प्रति भी। तभी वो संन्यास धारण करने वालों को उनकी सामाजिक उत्तरदायित्वों का बोध भी कराते रहते हैं —

'आसन मारी मंदिर में बैठूं, काम जलाय जोगी बन गइले हिजरा'।

संत कवि समाज से पलायन करने वाले ऐसे हिजड़ों को कभी क्षमा नहीं करते, वे उन्हें न केवल फटकारते हैं वरन उन्हें कर्मयोग करने का आह्वान करके अपने सामाजिक दायित्वों का निर्वहन भी करते हैं। एक सुदृढ़ सामाजिक विधि-निषेध को अनुपालन वे स्वयं करते हैं तथा ~~अन्य~~ अन्य से भी यही अपेक्षा करते हैं ताकि सामाजिक जीवन अधिक नियमित और आनन्ददायी हो सके। इस दृष्टि से इनका काव्य निश्चित रूप से मार्गदर्शन का कार्य करता है। ये रचनाएँ लोक संग्रह की भावना से परिचालित थे।